विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ
बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com
Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

अवन्ती क्षेत्र का इतिहास और राजवंश
पद्मश्री डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

पृष्ठ क्र. 3-4

प्राच्य भारत की भौगोलिक स्थिति
यतीन्द्र तिवारी

पृष्ठ क्र. 5-6

संस्कृत नाट्य परंपरा और भास
वी. अरूण कुमार

पृष्ठ क्र. 7

इतिहास में हर्ष की विद्वत्ता और शासन
राजेन्द्र कुमार अवस्थी

पृष्ठ क्र. 8

पुराण कथाएँ और ज्ञान का संसार
मिथिलेश यादव

अवन्ती क्षेत्र का इतिहास और राजवंश

पद्श्री डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

अतीत का समग्र विश्लेषण इतिहास है। प्रत्येक क्षेत्र का अपना इतिहास होता है। मध्यप्रदेश की मनहर–मालव मेदिनी भी अपनी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं से पर्याप्त समृद्ध है। कभी पूरा देश वनों या अरण्यों में विभाजित था। नैमिषारण्य दण्डकवन, वृन्दावन, मधुवन, महाकालवन, सह्यवन आदि कितने ही वनों का उल्लेख उनकी भीषण रमणीयता सहित पुरातन व पौराणिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। आरण्य साहित्य अरण्यकाण्ड, वनपर्व आदि उन अरण्यों तथा अरण्य संस्कृतियों को रेखांकित करते हैं। विन्ध्य के उत्तरी पठार पर जो महाकालवन था, उसके ही आदिदेवता ज्योतिर्लिंग महाकाल रहे। हैहय अवन्ती ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर इस प्रदेश को अपना नाम दिया और यह अवन्ती विषय या जनपद कहलाने लगा। परवर्तीकाल में मालवगण की यहाँ प्रभुसत्ता स्थापित होने पर यही क्षेत्र मालवा कहलाने लगा। प्राचीन देशों की ऐतिहासिक धारा के उत्स प्राय पौराणिक साहित्य तक व्याप्त है। मालवा का इतिहास भी हैहय परम्परा को आत्मसात करते हुए यदुकुल तक आ पहुँचती है। भगवान श्रीकृष्ण की बुआ राजाधिदेवी उज्जयिनी की राजमाता थीं। इस सम्बन्ध के कारण भी श्रीकृष्ण अवन्ती में शिक्षा के लिए आए होंगे। इसी बुआ की पुत्री मित्रविन्दा श्रीकृष्ण की रानियों में से एक थी और इस विवाह से अप्रसन्न यहाँ के राजकुमार विन्द तथा अनुविन्द ने महाभारत में कौरवों की ओर से युद्ध किया था जिसके हाथी अश्वत्थामा के मारे जाने की घोषणा से भ्रान्त द्रोणाचार्य भी मारे गये। अपनी दिग्विजय यात्रा के बाद प्रद्युम्न ने भी उज्जयिनी के इस राजकुल से स्नेह और मान पाया था। कालान्तर में इस क्षेत्र पर तालजंघ वेताल तथा उसके वंशजों का वर्चस्व स्थापित हो गया। वीतिहोत्र राजवंश के अन्तिम राजा की हत्या करके पुणिक ने अपने पुत्र प्रद्योत को अवन्ती का राजा बनाया। प्रद्योत क्रोधी होने से चण्ड और विशाल सेना का स्वामी होने से महासेन कहलाया। इसने अपने राज्य की सीमा और शक्ति में पर्याप्त वृद्धि कर ली थी। बुद्धकालीन षोडश महाजनपदों में इस अवन्ती का वर्चस्व उल्लेखनीय माना गया। इसकी पुत्री वासवदत्ता तथा वत्सराज उदयन की कथा भारतीय पुरातन कला और साहित्य को प्रभावित और प्रेरित करती रही। सातवीं शताब्दी के प्रसिद्ध लेखक दण्डी की अवंतीसुन्दरीकथा के अनुसार जब कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) का राजा रिपुंजय था तब विशाला (उज्जयिनी) का स्वामी वीतिहोत्र था। अपने इस स्वामी (वीतिहोत्र) को मारकर (मंत्री ने) अपने पुत्र प्रद्योत का अभिषेक कर दिया। इसी वंश के वंशज शिशुनाथ गिरिव्रज में शासक बना। इसके वंश में बिम्बसार अजातशत्रु, दर्शक, उदायी, नन्दिवर्धन, महानन्दि हुए। इससे स्पष्ट है कि उज्जैन के प्रद्योत के वंशज गिरिव्रज में शासक बना। उसी वंश में बिम्बसार अजातशत्रु आदि हुए। अतः ये प्रद्योत से पर्याप्त बाद के और उसके ही वंशज थे। इन संदर्भों का निरपेक्ष परीक्षण अपेक्षित है।

प्रायः एक सहस्राब्दी से अधिक काल तक भास, कालिदास, शूद्रक, हर्ष, पतंजलि सहित कितने ही गणमान्य साहित्यकारों की कृतियाँ इसका प्रमाण हैं। इस प्रद्योत के भाई कुमारसेन की हत्या तत्कालीन तालजंघ ने महाकाल–उत्सव में की थी। उसके दो पुत्र थे– पालक और गोपालक। पालक के समय की राज्य क्रांति की चर्चा मृच्छकटिक में की गई है। महावंश के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के समय बिन्दुसार अवन्ती का स्थानीय शासक था और बिन्दुसार के समय अशोक। इसका विदिशा की श्रेष्ठीपुत्री असगमित्रा से विवाह हुआ था जिनकी सन्तानें थीं– संघमित्रा और महेन्द्र। इन्होंने बौद्ध धर्म का लंका में पहली बार प्रचार किया। इसी वैश्य रानी ने उज्जैन में जो स्तूप बनवाया था, उसका अवशेष अब वैश्या टेकरी कहलाता है। जिसका उत्खनन भी करवाया जा चुका है। मालवा में शुंग विक्रम कालीन अनेक अवशेष प्राप्त होते हैं। उनमें साँची के कलात्मक स्तूप, विदिशा का हेलियोदोर का स्तम्भ, उज्जैन

के पिंगलेश्वर में चतुर्मुखी शिवप्रतिमा एवं शिवलिग आदि महत्वपूर्ण हैं। इस काल में ग्रीक, यवनों के आक्रमण भी हुए थे जिन्हें शुंगों ने विफल कर जीत लिया था। तभी गर्दभिल्ल, गन्धर्वसेन अथवा महेन्द्रादित्य की लोकप्रिय कथाओं, कालक द्वारा आमंत्रित शकों के आक्रमण और उन्हें पराजित कर विक्रमादित्य द्वारा विक्रम संवत् प्रवर्तन की कथाओं, विक्रम के शौर्य, न्याय व दान की कथाओं से सारा वातावरण अनुगुजित होने लगता है और उन कथाओं से पूरा साहित्य जगत् सुवासित हो उठा। ईस्वी पूर्व 57 में प्रवर्तित यह कृत या मालव संवत् विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध होकर आज भी अत्यन्त लोकप्रिय है। इसका एक मूर्तिलेख विक्रम संवत् 8 (49 ई.पू.) का है। विक्रमादित्य का एक लेख ॲवलेश्वर से प्राप्त हुआ जो प्रकाशित है। इस राजा के आश्रित कालिदास आदि नवरत्नों की चर्चा भी होती रहती है। इस समय दशपुर क्षेत्र के राजा पोण वंश के थे। बुद्धकालीन पूर्वोक्त प्रद्योत भी पोणवंश का था। आन्ध्र के सातवाहन कुन्तलराज विक्रमादित्य के सामंत थे। राजा हाल और बृहत्कथाकार गुणाढ्य की जोड़ी इसी समय हुई। गौतमीपुत्र सातकर्णि उन शासकों में प्रमुख रहा। इन्हें पराजित कर मालवा पर शकों ने अधिकार कर लिया जिन्होंने प्रायः प्रथम शताब्दी के उत्तरादर्भ से चतुर्थ शताब्दी के आरम्भ तक शासन किया। इस राजवंश में परमविजेता और संस्कृत का पोषक रुद्रदामा भी हुआ जिसका राज्यक्षेत्र काठियावाड़ तक व्याप्त था। पूर्वी मालवा पर तीसरी शताब्दी में आभरि राजा ईश्वरदत्त का भी शासन था। धूर्त विटसंवाद भाण सम्भवतः इसकी ही रचना हो।

गुप्तों के केन्द्रीय शासन के समय दशपुर सहित उत्तरी मालया पर औलिकर शासकों का वर्चस्व था। इस राजवंश के प्रकाशधर्मा ने हूण राजा तोरमाण को पराजित किया था। प्रकाशधर्मा के उत्तराधिकारी यशोधर्मा ने गुप्तों को भी अस्थिर कर देने वाले हूणराज मिहिरकुल को पराजित किया था। औलिकरों के शिलालेख मन्दसौर से बिहारकोटरा तक के क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। इस अवधि में उज्जैन के राजकुमार उपशून्य के उल्लेख प्राप्त होते हैं जो बौद्ध भिक्षु बनकर चीन चला गया था। इसी समय मालवा से परमार्थ सहित अन्य भी कई विद्वान चीन गए जिन्होंने बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद भी किया। प्रायः इसी कलावधि में बाघ सहित निमाड़ या दक्षिण मालया पर सुबन्धु आदि बल्ख नृपों का शासन था। ये राजा परम दानप्रिय थे। इनके तीस से अधिक ताम्रपत्रों का समूह बाध में प्राप्त हुआ है। जिस समय उत्तर भारत पर रेलवे का राज्य था। लोहबान उसी अवधि में मालवा पर हर्ष, विक्रमादित्य का शासन रहा। 638 ई. या 3740 कलि संवत् में उनके धर्मप्रमुख हरिस्वामी ने शतपथ ब्राह्मण की श्रुतितार्थ विवृत्ति लिखी थी। इसी हर्ष ने नाट्यवार्तिक रचना की थी। असम्भव नहीं, यदि रत्नावली प्रियदर्शिका आदि नाटिकाएँ भी इसी नाट्यविद् ने रचाई हों। इसी प्रकार मालवराज को पुलकेशी ने पराजित किया था। 634 ई में पूर्व और असंभव नहीं, यदि 641 में समागत ह्वेनसांग के समय भी मसामय का यही राजा हो। यह आचार्य का आश्रयदाता भी था। इसी समय एक और अनघर्ष उर्फ मौराज कल्चुरि का महेश्वर में शासन था। उनका 'तपस वत्सराज' नाटक प्रसिद्ध है। राष्ट्रकूट राज दन्तिदुर्ग ने उज्जैन में हिरण्यगर्भ यज्ञ करके महादान दिया था। मालवराज ने राष्ट्रकूटों पर भी आक्रमण किया था। जिनसेन ने बदनावर और दोस्तटिका या दोत्रया में जब 783 ई. में हरिवंशपुराण की रचना की थी तब अवन्ती क्षेत्र पर नन्नप व उत्तके उत्तराधिकारियों का राज्य था। जैन कथानुसार प्रतिहार राजा ने मालव राज्य महाकाल को समर्पित करके परमार वंशज को उसका संरक्षक बनाया था। राष्ट्रकूटों के अधीनस्थ परमार नृपों ने गुजरात के खेड़ा में अपनी शक्ति को बढ़ाते हुए मालवा में प्रवेश कर लिया। सीयक द्वितीय के समय तक मालवा पर परमार राष्ट्रकूटों के प्रतिनिधि थे। परन्तु मुंज ने राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट को 972 ई. में जीतकर स्वयं को मालवा में स्वतंत्र घोषित कर दिया। इसने उत्तरी मालवा के हूणों को भी पराजित किया था। सीयक और सिन्धुराज ने भी इन्हें पराजित किया था। मुंज स्वयं कवि तथा साहित्यकारों का प्रेरक था। सिन्धुराज का चरित 'नवसाहसांकचरित' काव्य में पद्मगुप्त ने प्रस्तुत किया। इस नव विक्रम का यह कवि शैली से तत्कालीन कालिदास ही था जिसकी राजा भोज से निकटता की प्रस्तुति भोज प्रबंध में हुई है। भोज स्वयं विविध विषयक ग्रन्थों का रचयिता, विद्वानों का आश्रयदाता तथा विजेता था। इसने महाकाल सहित कई मंदिर, महल, शारदासदन बनवाए। भोजपुर झील बनवाई और जिसके समय की वाग्देवी प्रतिमा लन्दन के संग्रहालय में प्रदर्शित है। राजा भोज अपनी राजधानी उज्जैन से धार ले गया। इस परमार वंश में विद्वत्परम्परा सदियों तक बनी रही। नरवर्मा की महाकाल प्रशस्ति उदात्त है तो अर्जुनवर्मा रचित अमरुशतक की टीका लोकप्रिय है। उदयादित्य के शासनकाल में द्रोणवंश के विज्जसिंह ने लक्ष्मदेव के साथ खुरासानी शाहजादे महमूद के साथ विजय प्राप्त की थी। इस द्रोणवंश में उत्तरी मालवा से बाँगड क्षेत्र (डूंगरपुर) तक शासन किया था। परमार जगद्देव की अपनी वीरता की धाक गुजरात और विदर्भ तक व्याप्त थी। इन्हीं दिनों निमाड़ पर भी बल्लाल का भी वर्चस्व रहा जिसकी निर्मितियाँ उनमें देखी जा सकती हैं। गुजरात के जयसिंह सिद्धराज ने 1136 ई. के लगभग यशोवर्मा को पराजित कर अवन्तीनाथ की उपाधि धारण की थी। उसने उज्जैन के सरस्वतीकठाभरण पुस्तकालय में राजा भोज के रचे विविध विषयक ग्रन्थ देखे थे। इसी समय गुजरात पाटन के वणिकों का उज्जैन में पटनी बाजार सक्रिय हुआ। इस राजा का बनाया मनोहर और भव्य शिव मंदिर रतलाम के निकट बिलपॉक में आज भी देखा जा सकता है जिसमें एक प्रशस्ति शिलांकित है। 1234–35 ई. में देवपालदेव के शासनकाल में इल्तुतमिश के आक्रमण से महाकाल का मंदिर क्षतिग्रस्त हुआ था जो शीघ्र ही सुधार लिया गया। इस विजय के निशान के रूप में वह विक्रमादित्य की प्रतिमा को दिल्ली ले गया। तेरहवीं सदी के अन्त में हम्मीर ने शिप्रा स्नान कर महाकाल की अर्चना की।

प्राच्य भारत की भौगोलिक स्थिति

यतीन्द्र तिवारी

प्राचीन भारत की भौगोलिक तथा प्राकृतिक स्थिति के सम्बन्ध में वैदों से लेकर पुराणों और परवर्ती विभिन्न विषयक ग्रन्थों तक पर्याप्त सामग्री बिखरी हुई मिलती है। इस सामग्री में लोक–लोकान्तरी, समुद्रों नदियों पर्वतों और उपत्यकाओं का विस्तार से उल्लेख हुआ है। उसके द्वारा तत्कालीन राष्ट्रों, जनपदों देशों और वहाँ की विभिन्न निवासी जातियों के स्वभाव प्रभाव तथा नैतिक–वैचारिक मान–मूल्यों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वैदिक भारत के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि वेदों के ऋषि तत्कालीन भौगोलिक तथा प्राकृतिक परिस्थितियों से अपरिचित एवं अनपेक्षित नहीं थे। उनकी दृष्टि व्यापक थी और उन्होंने समस्त ब्रह्माण्ड पर विचार करते हुए उसे पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग लोक इन तीन विभागों में विभक्त किया, ऋग्वेद में जिसे त्रयी नाम से कहा गया है। इस प्रथम विभाग पृथिवी को ऋग्वेद में भूमि क्ष्मा और ग्मा आदि अनेक नामों से कहा गया है और उसे महान (मही), चौड़ी (उर्वी), विस्तृत (उत्ताना) तथा असीम (अपारा) बताया गया है। संहिताओं में पृथ्वी और अन्तरिक्ष का अलग–अलग वर्णन होने के साथ–साथ उनका युगल–रूप में भी उल्लेख हुआ है, यथा रोदसी, क्षोणी और द्यावा पृथ्वी आदि। इन युगल रूपों को अर्धक कहा गया है, जिससे ज्ञात होता है कि वे एक–दूसरे की ओर मुँह किये हुए थे। जैसा कि प्राचीन ग्रन्थों और आधुनिक खोजों के आधार पर विदित होता है कि पृथ्वी महासागर से घिरी हुई मण्डलाकार या वृत्ताकार है। मंत्र–संहिताओं में ऐसा कुछ नहीं कहा गया है। संहिताओं में अन्तरिक्ष–लोक को वायुमण्डल कहा गया है। मेघ और कुहरे से युक्त इस लोक को रजस् भी कहा गया है, जो कि जलमय है और जिससे समस्त नदी–नदों को जल–धाराएँ प्राप्त होती है। उसे अन्धकारावृत भी कहा गया है और उसका एक द्वित्तरीय तथा त्रिस्तरीय विभाजन भी देखने को मिलता है। इस अन्तरिक्ष–लोक में जल सोम अलौकिक अग्नि और विष्णु का निवास है। तृतीय ब्रह्माण्ड भाग स्वर्ग–लोक सहित दिव, व्योमन् और प्रकाश से परिपूर्ण (प्रदीप्त स्थान, रोमन) कहा गया है। इस व्योमन में देव पितर औरोम निवास करते हैं। उसे शीर्ष, सतह और पृष्ठ आदि नामों से भी कहा गया है। ब्रह्माण्ड विभाजन का यह त्रिविध स्वरूप वर्णन ऋग्वैदिक ऋषियों की देन है। किन्तु इस विराट परिकल्पना के आधार पर वैदिक राष्ट्र की भौगोलिक परिधियों की वास्तविकता का पता लगाना संभव नहीं है। ऋग्वेद में वस्तुत इस दृष्टि से कुछ नहीं कहा गया है। अर्थर्ववेद के कतिपय सन्दर्भो से तत्कालीन भारत के भौगोलिक परिवेश का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। अथर्ववेद में गान्धार, मूजयत्, महावृष, बाहुलीक, मगध तथा अंगदेश का उल्लेख हुआ है। एक मत्र में अष्टयक्र (या अष्टापद) आकारयुक्त अयोध्या का और एक अन्य मंत्र में वरुणावती का उल्लेख हुआ है। वरुणावती में विद्वानों ने वाराणसी का समीकरण किया है। अन्य दो मन्त्रों में दक्षिण पश्चिम समुद्र की और संकेत किया गया है। अथर्ववेद के उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि अधर्ववैदिक आर्यों ने दक्षिण पश्चिम और पूर्व की ओर अपनी सीमाओं का विस्तार कर लिया था। वहीं उन्होंने अपने प्रभुत्व तथा अपने देवताओं की स्थापना की और अपनी संस्कृति का विकास किया। उक्त उल्लेखों के आधार पर ज्ञात होता है कि पश्चिम में बल्ख (बहुलीक) से लेकर पूर्व में बिहार तक अथर्ववैदिक आर्यों का अस्तित्व व्याप्त हो चुका था। प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में मनुस्मृति में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। कहा जाता है कि मनु द्वारा सूत्र–रूप में प्रोक्त उपदेशों को भृगु मुनि ने लोक–रूप में निबद्ध कर मनुस्मृति के रूप में प्रकाशित किया। किन्तु मनुस्मृति का जो वर्तमान स्वरूप है उसको विद्वानों ने शुग युग (द्वितीय या प्रथम शती ई. पूर्व) का बताया है। मनुस्मृति में प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति के चार रूप बताये गये हैं, जिनके नाम है ब्रह्मावर्त ब्रह्मर्षिदेश मध्यदेश और आर्यावर्त। मनु ने ब्रह्मावर्त की सीमाओं को निर्धारित करते हुए मनुस्मृति में लिखा है कि सरस्वती और दृषद्वती इन दो देवनदियों के मध्य में अवस्थित देवनिर्मित देश

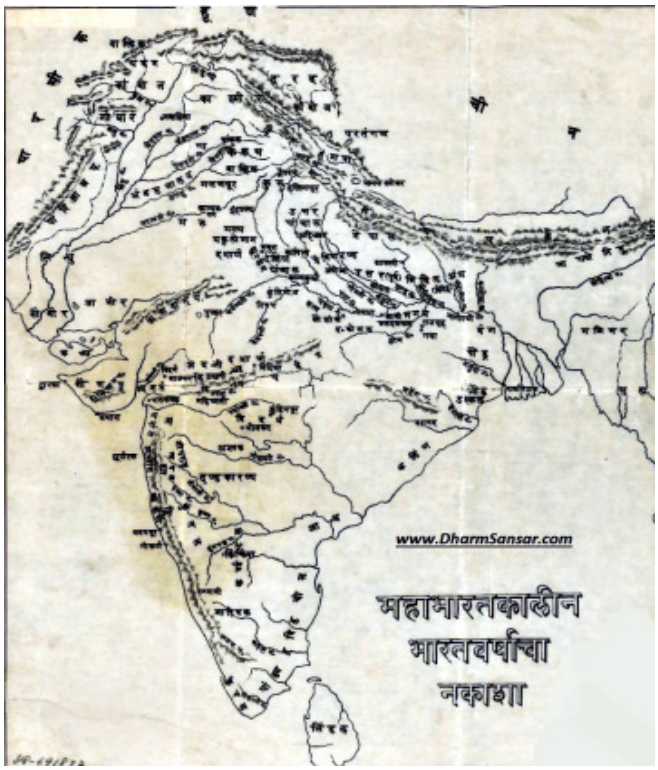

ब्रह्मावर्त कहा जाता है। मनु ने इस देश के ब्राह्मणों तथा अम्बष्ठ रथकार आदि वर्णसंकर जातियों के कुल–परम्परागत आचार को सदाचार की संज्ञा से सम्मानित किया है। कतिपय आधुनिक विद्वानों ने प्राचीन सहावर्त को पंजाब का वर्तमान हिसार जिला बताया है जो कि उचित नहीं है। सप्तसिन्धु में अपना अस्तित्व जमा लेने के उपरान्त आर्यों ने भारत के विभिन्न अंचलों में अपना विकास विस्तार किया। उनके विस्तार की इस स्थिति कोही ब्रह्मावर्त के नान से कहा गया है। मनु ने ब्रहार्षिदेश की सीमाओं का उल्लेख करते हुए मनुस्मृति में लिखा है कि कुरक्षेत्रमय पांचाल और सूरसेन जनपदों से युका भू–खण्ड को ब्रह्मर्षिदेश के नाम से कहा जाता है, जो कि आयोग के अन्तर्गत है। मनु ने इस ब्रहार्षि देशवासी ब्राह्मणों के बरित्र को सर्वोच्च स्थान दिया है और उनसे पृथ्वी के समस्त मानवों को शिक्षा ग्रहण करने का निर्देश किया है।

मध्यदेश की चतुर्दिक सीमाओं का उल्लेख करते हुए मनु ने मनुस्मृति ने लिखा है कि उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में बीकानेर (विनशन) और पूर्व में प्रयाग इन सीमाओं से परिवेष्टित भू–भाग मध्यदेश के नाम से कहा जाता है। इस भौगोलिक वृत्त के अनुसार मध्यदेश मरुभूमि में सरस्वती के विलीन हो जाने के स्थान से लेकर गंगा–यमुना के रागम के बीच के भू–भाग में स्थित था। ऐतरेय ब्राडा मे कुरुओं, पांचाली, वृषों और उशीनरी को इस क्षेत्र का मूल निवासी कहा गया है। इसी ब्राह्मण ग्रंथ में कहा गया है मध्यदेश में एकतंत्र शासन प्रणाली प्रचलित थी। मनु के अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रन्थकारों ने की सीमाओं के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। इन ग्रन्धकारों में बड़ा मतभेद देखने को मिलता है। यास्क ने निरुक्त में लिखा है कि कम्बोज देश आर्यों की सीमा से बाहर है, यद्यपि वहीं भी आर्य भाषा ही बोली जाती है। पतंजलि के महाभाष्य में सुराष्ट्र को आर्यदेश के अन्तर्गत नहीं माना गया है।

वशिष्ठ धर्मसूत्र और बौधायन धर्मसूत्र में आयांव की सीमाएँ ममिलन के पहले सरस्वती से पूर्व बालकवन (संभवत हरिद्वार) के पश्चिम् पारिया (विश्यका पश्चिमी भाग, जिससे चम्मल, बेतवा तथा शिप्रा आदि नदियों निकलती हैं) एवं वियपर्वत के उत्तर और हिमालय के दक्षिण तक विस्तृत है। इसी धर्मसूत्र ने एक अन्य स्थान पर गंगा और यमुना के नाम से स्थित देश को आर्यावर्त नाम से कहा गया है। सख धर्मसूत्र ने लिखा गया है कि सिन्धु चौचर से पूर्व का नगर से पश्चिम हिमालय के दक्षिण और पारिया पर्वत के उरार आर्यावर्त में पुनीत आध्यात्मिक नहिना (बारा) विराजमान है। तैतिरीय आरण्यक में इस क्षेत्र के निवासी विशेष आदरणीय माने गये हैं। विष्णु धर्मसूत्र और याज्ञवल्क्य–स्मृति में भी लगभग ये ही बातें कहीं गयी हैं। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि इस भूमि पर कृष्ण मृग विचरण करते हैं। यहीं यज्ञों की भूमि है। इस प्रकार उक्त मन्तव्यों में विविधता देखने को मिलती है। आर्यावर्त की सीमाओं के सम्बन्ध में प्रामाणिक बहुमान्य मत मनुस्मृति का है। उसमें लिखा है कि पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों, उत्तरी हिमालय और दक्षिणी विन्ध्याचल के बीच अवस्थित भू–भाग आर्यावर्त कहलाता है। मनुस्मृति के भौगोलिक वृत्त का समर्थन वशिष्ठ धर्मसूत्र और कौषीतकी उपनिषद भी करते हैं। यह आर्यावर्त अनेक जन–पदों में विभक्त था। वहाँ की शासन प्रणालियाँ भी भिन्न–भिन्न थीं। मनु ने स्वराष्ट्र, परराष्ट्र, मित्रराष्ट्र तथा शत्रुराष्ट्र और मण्डलराष्ट्र आदि अनेक आर्यावर्तिक जनपदों का उल्लेख किया है और यह भी कहा है कि इन जनपदों के पारस्परिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण थे। इस आर्यावर्त शब्द में निहित आवर्त से किसी अन्य क्षेत्र से लौटने का आभास होता है। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने आर्यों को बाहर से आया हुआ सिद्ध किया है, किन्तु उसका ऐसा अर्थ लगाना नितान्त कल्पना है।

वस्तुतः उसका आशय यह है कि जल–प्लावन की समाप्ति पर जब उत्तर गिरि प्रदेश अर्थात् तराई–भावर का समुद्र सूख गया था या उतर आया था तो आर्य लोग पुन ब्रह्मावर्त (हरिद्वार से ऊपर मानसरोवर तक) से आर्यावर्त में लौट आये थे। आर्यावर्त तथा ब्रह्मावर्त आदि की सीमाओं के अतिरिक्त ऐसे भी अनेक क्षेत्र थे, जिनमें वैदिक सभ्यता, संस्कृति का प्रवेश नहीं था, अथवा वे वैदिक परम्परा से भिन्न आचार वाले थे। बौधायन धर्मसूत्र में उन जनपदों के अवन्ति अग, मगध सुराष्ट्र, दक्षिणापथ उपावृत्, सिन्धु और सौवीर नाम दिये गये हैं और कहा गया है कि इन जनपदों के लोग शुद्ध आर्य नहीं है। इन जनपदों को जाने वाले लोगों को प्रायश्चित के लिए सर्वपृष्ठ तथा वैश्वानर यज्ञ करने पड़ते हैं। सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, म्लेच्छदेश अग बग, कलिंग और आन्ध्र जनपदों में जानेवाले लोगों को उपनयन संस्कार करना पड़ता था।

महाभारत में सिन्धु तथा पचनद निवासियों को अशुद्ध एवं धर्मवाहो कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अनार्यों की उत्तर–पश्चिम तथा दक्षिण में प्रमुखता होने से वहाँ वास योग्य नहीं समझा जाता था। आर्यावर्त के बाहर सतलज से उत्तर में काबुल तक और दक्षिण में द्रविड़ (दक्षिणापथ) तक के क्षेत्र को अनार्थ कहा गया है। इस सम्बन्ध में यास्क का निरुक्त, पाणिनि की अष्टाध्यायी और पतंजलि का महाभाष्य विशेष रूप से द्रष्टव्य है। अष्टाध्यायी से ज्ञात होता है कि तत्कालीन भारत की सीमाएँ पूर्व में कलिंग तक पश्चिम में विनय तथा कच्छ तक उत्तर में तक्षशिला तथा स्थात नदी प्रदेश तक और दक्षिण में अश्मक (गोदावरी नदी) तक विस्तृत थीं। पुराणों में जिस धर्म, शासन, न्याय और आचार आदि का वर्णन हुआ है वह भारतवर्ष या भारतवर्ष के निवासियों के लिए है। पौराणिकों की दृष्टि में भारतवर्ष वहीं है. जहाँ वैदिक धर्म और संस्कृति का प्रचार–प्रसार है। आर्यावर्त का भारतवर्ष नामकरण कब और कैसे हुआ। इस सम्बन्ध में पुराणकारों में मतान्तर देखने को मिलते हैं। मार्कण्डेय पुराण और वायु पुराण आदि में कहा गया है कि मनु के परवर्ती वंशज ऋषभ के पुत्र मरत नाम पर इस देश का भारतवर्ष नामकरण हुआ। किन्तु वायु पुराण के एक अन्य संदर्भ में कहा गया है कि दुष्यन्त शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम पर भारतवर्ष नामकरण हुआ।

संस्कृत नाट्य परंपरा और भास

वी. अरुण कुमार

बीसवीं सदी के आरम्भ तक महाकवि "भास" रचित नाटकों के विषय में केवल यत्र–तत्र प्रशस्ति वाक्य सुनने को मिलते थे। भास के नाटकों का स्वरूप लोगों को ज्ञात नहीं था। केवल दक्षिण भारत की कुछ हस्तप्रतियों में ही भास नाटकचक्र सीमित था। यद्यपि पूर्व संस्कृत के आचार्यों तथा कवियों ने भास तथा उनके नाटकों की बहुशः प्रशंसा की थी तथापि उनकी कोई भी कृति उपलब्ध नहीं हुई थी। स्वयं महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् नाटक के आरम्भ में सूत्रधार के मुख से प्रश्न करवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों की कृतियों का अतिक्रमण कर कालिदास की कृति का अत्यधिक आदर क्यों है? इससे स्पष्ट है कि अतिप्राचीन काल से इनके नाटक अपना विशिष्ट स्थान रखते थे तथा मान्य कवियों की दृष्टि में सम्मानित थे। सर्वप्रथम महामहोपाध्याय टी. गणपति शास्त्री ही उन्नीसवीं शताब्दी में भास के नाटकों को प्रकाश में लाए। भास संस्कृत साहित्य के बड़े नाटककार के रूप में मान्य थे परंतु उनके नाटक अप्राप्त थे। सन् 1907 में टी.गणपति शास्त्री को केरल में, पद्मनाभपुर में मलयालम लिपि में लिखित संस्कृत के दस नाटक प्राप्त हुए। खोज करने पर तीन और नाटक मिले। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान महामाह उपाध्याय टी. गणपति शास्त्री (सन 1860–1926) को पूर्व रियासत त्रावणकोर में ताड़ के पत्तों पर लिखी तीन सौ साल पुरानी पांडुलीपियाँ मिली थीं। "स्वप्नवासवदत्ता" को मिलाकर इनमें कुल 13 नाटक थे । उनमें लेखक का नाम नहीं लिखा था। अब सवाल यह कि गणपति शास्त्री इस नतीजे पर कैसे पहुँचे, कि ये सब नाटक भास ने ही लिखे थे? इस मामले में परंपरा और बाद की पीढ़ी के लेखकों–कवियों ने हमारी मदद की। चूँकि भास इनमें से ज़्यादातर लेखकों के आदर्श थे, इसलिए उन्होंने उनकी लेखन शैली की कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया था। भास अपने हर नाट का आरंभ 'नान्द्यन्तेततः प्रविशतिसूत्रधार' उक्ति से किया करते थे। इसके अलावा एंकर (सूत्रधार) श्लोक पढ़ते समय नाटक के सभी पात्रों के नामों का उल्लेख करता था। हर नाटक के समापन की अंतिम उक्ति (भरत वाक्य) होती थी। इन बातों और अन्य तथ्यों के आधार पर गणपति शास्त्री इस नतीजे पर पहुँचे, कि ये नाटक किसी और ने नहीं बल्कि भास ने लिखे हैं। गणपति शास्त्री ने जो नाटक खोजे थे, वे पारंपरिक नाटक मंडलियों के लिए तैयार, संस्कृत में लिखी पटकथाएँ थीं। इन अभिनेताओं को चाक्यार कहा जाता था। चूँकि ये अभिनेताओं के लिए लिखी गई पटकथाएँ होती थीं, इसलिए ये संभव है, कि इसमें कुछ बदलाव भी किए गए होंगे, लेकिन नाटक की विषय वस्तु, कहानी और शब्दों में को परिवर्तन नहीं होता था। इस अद्भुत खोज और संपादन के लिए, जर्मनी के टुबिनगन विश्वविद्यालय ने शास्त्री जी को डॉक्टर की उपाधि दी थी। ये पांडुलीपियाँ कोच्चि में त्रिपुनितापुरा के सरकारी संस्कृत कॉलेज के संग्रहालय में रखी हुई हैं।

सन् 1912 में गणपति शास्त्री द्वारा अनंतशयन संस्कृत ग्रंथावली में भास के नाम से वे प्रकाशित किए गए। इन नाटकों की अनेक प्रतियाँ अन्य स्थानों से प्राप्त हुई। यह भी कभी–कभी कहा जाता है कि भास के उपलब्ध नाटक अधूरे थे जिसे अन्य या अन्यजनों ने पूरा करके उन्हें वर्तमान रूप दिया। केरल के चाकार परंपरा ने समान रूप से सुरक्षित रखा है। परंपरागत प्रसिद्धि के अनुसार उनकी संख्या तेईस या तीस कही गई है। त्रिवेंद्रम् संस्करण के तेरह नाटकों में कुछ ऐसी समानताएँ और विशेषताएँ हैं जिनके कारण वर्तमान संस्करण की नाट्यलेखन और नाट्यशिल्प के कलाकार की एकता सूचित होती है। ष्नांद्यंते ततः प्रविशति सूत्रधारः से इनका आरंभ, प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग, नाटककार के नाम का अभाव, भरतवाक्य में प्रायः साम्य, भरत के नाट्यशास्त्रीय कुछ विधानों का अपालन, संस्कृत में कतिपय अपाणिनीय रूप का प्रयोग, अनेक नाटकों में कुछ पात्रों के नाम का साम्य, विचार और आदर्श की समानता, प्राकृत भाषा की कुछ विलक्षणता आदि ऐसी बातें हैं जिनके कारण इन सब के एक कृतत्व का संकेत भी मिलता है। महाकवि भास संस्कृत के आद्यनाटककार माने जाते

हैं। किन्तु भारत में गायन, वादन, नर्तन आदि की परम्परा बहुत पुरानी है। मोहन जोदड़ो और हड़प्पा स्थलों की खुदाई से नर्तकी की मूर्ति मिली है, मिट्टी के ठप्पों पर वीणा के चित्र मिले हैं। इससे स्पष्ट है कि भारत में ये कलाएँ हड़प्पा सभ्यता के बहुत पहले समुन्नत हो चुकी थी। चूँकि प्राचीन भारत में सभी प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन और अध्यापन श्रुति–परम्परा के माध्यम से होता था अतः लिखित प्रमाण का होना आवश्यक नहीं है। नाट्य परम्परा के सम्बन्ध में उपलब्ध सर्वप्राचीन ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' के विषय में भी यह कहना गलत नहीं होगा कि नाट्यशास्त्र की शिक्षा भी श्रुति परम्परा से आगे बढ़ी और बाद में इसका लिखित रूप प्रकाशित हुआ।

जब हम भारतीय नाट्यकला अथवा नाटककार के सम्बन्ध में विचार करते हैं तब स्वाभाविक रूप से वह नाट्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में ही होता है, क्योंकि मुनि भरत प्रणीत यह महान् ग्रन्थ भारतीय नाट्य परम्परा के प्रत्येक पक्ष को परिभाषित करता है। इस अकेले ग्रन्थ में नाट्यविषयक विवरण जितनी समग्रता से प्रस्तुत किया गया है उतना अन्यत्र नहीं मिलता। यही कारण है कि इस ग्रन्थ ने भारत की रंगमंचीय–कला को शताब्दियों से प्रभावित किया हुआ है। संस्कृत साहित्य अपनी विविधता तथा विशिष्टता, समृद्धि तथा सार्वभौमिकता, उपलब्धि तथा सक्रियता सभी दृष्टि से अनुपम है। भारत के साहित्यक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्वरूप का सर्वांगीण अंकन तथा प्रति–बिम्बन जितना प्रचुर तथा प्रांजल संस्कृत साहित्य में हुआ है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। गुण और परिमाण उभय दृष्टि से संस्कृत साहित्य महान् है। इस विशाल संस्कृत साहित्य का एक–एक अंग अपनी समृद्ध परंपरा को लेकर चरम विकास के बिन्दु तक पहुँचा है। यदि हम केवल संस्कृत के विशुद्ध साहित्य का ही पर्यवेक्षण करें, तो दृश्य और श्रव्य के व्यापक परिवेश में यह महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका, चम्पू तथा नाट्य–साहित्य के विभिन्न रूपों में पर्याप्त विकसित दृष्टिगोचर होता है। इन सब में भी केवल नाट्य–साहित्य की विशाल परंपरा में रूपकों की विविध रूपता ही गुम्कानुगुम्फ–रूप से इतनी परिव्याप्त है कि संभवतः उतनी अन्य किसी अंग की उपलब्ध नहीं है। संस्कृत साहित्य के विभिन्न रूपों में नाट्य रूपों का समधिक अभिसर्जन नाट्यसाहित्य की अभिरूपता तथा लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। इसके प्रस्तार का मूल कारण नाट्य–कला का वह हृदयावर्जक रूप ही है जिसके कि कारण कलाकारों ने अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में इसको सर्वविध समृद्ध किया है। नाट्य रूपों की समुन्नत परंपरा में रूपक तथा उपरूपक से संबंधित रूप समृद्धि ही नहीं, अपितु विषय आदि से सम्बन्धित परिवृद्ध परम्परा भी प्राप्त है। सामान्यतः रसास्वाद या श्रानन्दास्वाद ही प्राणी मात्र के जीवन का उद्देश्य होता है। हालाँकि कुछ विद्वान ब्रह्मानन्द के आस्वाद को अधिक महत्व देते हैं तो कुछ काव्यानन्द के आस्वाद कोय तथापि सभी का मानना है कि इन दोनों में कुछ साम्य संवश्य है, और इस आनंद प्राप्ति में ही मनुष्य के ज्ञान–विज्ञान की सार्थकता है। भास के समय के विषय में में मतभेद है। विद्वानों ने ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी ईस्वी तक की तिथियाँ भास के लिये प्रस्तावित की है। संभवतः उनका आविर्भाव ईसा पूर्व पाँचवी शती में हुआ था। प्रतिमान, अभिषेक, पंचरात्र, मध्यमव्यायोम, दूतघटोत्कच, कर्णभार, दूतवाक्य, उरुभंग, बालचरित्र, दरिद्रचारुदत्त, अविमारक, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता भास की प्रमुख रचनाएँ हैं– प्रतिमान तथा अभिषेक की कथाएँ रामायण से ली गयी हैं और इनमें क्रमशः राम वनवास से लेकर रावण वध तथा राम के अभिषेक की घटनाएँ वर्णित हैं। पंचरात्र, मध्यम व्यायोम, दूत घटोत्कच, कर्णभार, दूतवाक्य तथा उरुभंग के कथानक महाभारत से लिये गये हैं। बालचरित में कृष्ण का चरित वर्णित है। दरिद्र चारुदत्त में निर्धन ब्राह्मण चारुदत्त तथा वसंतसेना की प्रेम कथा है। अविमारक में अविमारक तथा कुरंगी के प्रेम का वर्णन है। प्रतिज्ञायौगंधरायण तथा स्वप्न वासवदत्ता का संबंध कौशाम्बी नरेश उदयन तथा अवन्तिराज की पुत्री वासवदत्ता के प्रणय प्रसंगों से है। स्वप्नवासवदत्ता भारत का सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक है।

भास ने अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक जीवन के विभिन्न अंगों का अच्छा चित्रण प्रस्तुत किया है। शैली सीधी तथा सरल है तथा नाटकों का मंचन आसानी से किया जा सकता है। समस्त पदों अथवा अलंकारों के भार से उनके नाटक बोझिल नहीं होने पाये हैं। उनके नाटकों में सरलता, सरसता, भावाभिव्यक्ति, भाषा–सौष्ठव संवादों में संक्षिप्तता एवं प्रभावोत्पादकता के दर्शन होते हैं। यहाँ शिष्ट एवं परिष्कृत हास्य, व्यंग्य की प्रचुर रूप में देखने को मिलता है। महाकवि भास के सभी नाटक रंगमंच की आवश्यकता एवं मर्यादा को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं कि नाट्यकला की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है उनकी अकृत्रिम शैली। उनके नाटकों में मौलिकता एवं कल्पना वैचित्र्य के विशेष रूप से दर्शन होते हैं। अपनी इसी विशेषता के कारण भास समान्य कथानक में भी विशेष रोचकता का आधान कर देते हैं। उनके नाटकों को देखकर दर्शक स्वयं को उसका अंग मानता है।भास एक लंबे समय तक रहस्य बने रहे, क्योंकि उनके नाटक उपलब्ध नहीं थे। न कोई पांडुलीपियाँ और न उनकी रचनाओं के कोई अंश ही उपलब्ध थे। बस उनकी स्मृति 15–20 सदियों के कई लेखकों के कई नाटकों के पृष्ठों में सजीव थीं। लेकिन इसके बावजूद भास प्राचीन भारत के सबसे चर्चित, प्रसिद्ध और प्रेरणदायक साहित्यकार रहे हैं। इस रहस्य को सुलझाने के पहले हम एक नजर डालते हैं, शास्त्रीय संस्कृत साहित्य पर जो नाट्य साहित्य से भरा पड़ा है। ये नाट्य साहित्य संस्कृत अलंकारों से सुसज्जित कोई गद्य और गीत नहीं हैं, जिसके माध्यम से कोई कथा कही जा रही है। कई बार पुराणों और महाभारत से कवि–लेखक अपने कौशल और भाषा पर अपनी महारत के जरिए, अपना खुद का संसार बुनता है जिसे पढ़कर लोग कहानी में खोकर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

इतिहास में हर्ष की विद्वत्ता और शासन

राजेन्द्र कुमार अवस्थी

हर्षवर्धन भारत के आखिरी महान् राजाओं में एक थे। चौथी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक मगध पर से भारत पर राज करने वाले गुप्त वंश का जब अन्त हुआ, तब देश के क्षितिज पर सम्राट हर्ष का उदय हुआ। उन्होंने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाकर पूरे उत्तर भारत को एक सूत्र में बांधने में सफलता हासिल की। हर्ष दिग्विजयी साम्राज्य का स्वामी होने के साथ–साथ स्वयमेव विद्वान् और विद्वानों का आश्रयदाता, प्रशंसक तथा गुणग्राही शासक था। भारतीय इतिहास में इस प्रकार के बहुगण–सम्पन्न महान् पुरुषों के अनेक उदाहरण हैं, जिन्हें श्री और सरस्वती, दोनों का परम अनुग्रह एक साथ प्राप्त रहा। शूदक समुद्रगुप्त मातृगुल सरीवर्मा, मायुराज, मुंज, भोज और यहाँ तक कि बाबर जहाँगीर तथा दास आरि परिवर्ती शासकों का नाम इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। जिनका काव्य–यश अनेक कृतियों के रूप में आज भी जीवित है।

हर्ष इसी परम्परा का यशस्वी शासक था। एक कृतिकार के रूप में उसने जो यश अर्जित किया और साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बनाकर अपनी जिस विद्वत्ता का परिचय दिया उससे अधिक श्रेय अर्जित किया बड़े–बड़े कवियों को सम्मानित एवं प्रोत्साहित करके।

इतिहास में परम्परा से यह देखने को मिलता है कि भारतीय शासकों ने कवियों, कलाकारों और विद्वानों को अपनी राजसभा में स्थान देकर सम्मानित किया। वे विद्वान् अपने आश्रयदाताओं को धर्म और नीति के सदुपदेश द्वारा, कवि उनका काव्यविनोद करके और कलाकार उनमें सौन्दर्यानुराग को उद्दीप्त करके उनकी बौद्धिक समृद्धि में योगदान किया करते थे। वे अपने आश्रयदाता शासक के राजनीतिक संकटों के निवारक, उसके परामर्शदाता सहायक और अवसर आने पर रणभूमि में शस्त्र धारणकर मातृभूमि की रक्षा में प्राणोत्सर्ग करने में भी अग्रणी होते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वानों, कवियों और कलाकारों का समागम गरिमा, स्वाभिमान, महानता और उच्चता का द्योतक गाना जाता था। राजसभा के वे भूषण हुआ करते थे और पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के परिचायक भी। कनिष्क ने अपने मगध विजय के रूप में अश्वघोष को प्राप्त कर महान् सन्तोष का अनुभव किया था। गुप्त सम्राटों का विद्वत्प्रेम इतिहास प्रसिद्ध है। इसी प्रकार कन्नौजराज यशोवर्मा ने भवभूति, प्रतीहारराज महेन्द्रपाल तथा महीपाल ने राजशेखर, चालुक्यराज विक्रमादित्य ने विल्हण और परमारराज मुंज तथा भोज ने अनेक कवियों को प्रश्रय देकर अपने विद्यानुराग का परिचय दिया।

गुणग्राही हर्ष के विद्याप्रेम का उज्ज्वल उदाहरण नालन्दा विश्वविद्यालय है। छैन–त्सींग ने लिखा है कि हर्ष के समय नालन्दा विश्वविद्यालय अपने चरमोत्कर्ष पर था। उस समय वहीं लगभग डेढ हजार पारंगत विद्वानों द्वारा विभिन्न विषयों के अध्ययन की व्यवस्था थी। हर्ष ने प्रचुर दान देकर इस विश्वविद्यालय का विस्तार किया था। उसके समय वहाँ देशी–विदेशी अओल ही संख्या लगभग दस हजार तक थी (जीवन चरित, पृ. 112)। हर्षयुगीन नाल्या विश्वविद्यालय ज्ञानोपदेश एवं शास्त्र चर्चा की दर से भारों का ही नहीं विश्व भर का प्रमुख ज्ञान केंद था। सिंहल, सुवर्ण–द्वीप यवद्वीप, कम्बो चीन और पारस आदि विभिन्न देशों के विद्यानुरागी वहीं आकर ज्ञानका आलोक लेकर स्वदेश लौटते थे। सर्व विद्याप्रेम का यह अनुपम उदाहरण है कि अपने साम्राज्य की आय का चतुर्थांश वह विद्वानों के पुरस्कार–सम्मान के लिए सुरक्षित रखते थे (वाटर्स, 1. पृ० 176)। उसकी राजसभा में जैन, बौद्ध, हिन्दू सभी धर्मों के विद्वानों का प्रवेश समान रूप से था। उसकी विद्वत्सभा में बाण, मयूर, मातंग दिवाकर और ईशान जैसे संस्कृत तथा लोकभाषा के प्रख्यात विद्वान साहित्य–सृजन में संलग्न थे। मालदा के तत्कालीन तार्किक श्रेष्ठ धर्मकीर्ति के संसर्ग से हर्ष के जीवन में सत्यवादिता त्याग और ज्ञान का उदय हुआ।

हर्ष के सुसम्पन्न एवं सुखी शासनकाल में प्रजाजन विद्योपार्जन में अग्रसर थे और विद्वत्समाज ज्ञान के प्रचार–प्रसार में संलग्न था। हर्ष जितना ही दानी तथा उदार था, विद्वत्समाज धन–वैभव के प्रति उतना ही विरक्त एवं निरपेक्ष था। दानी हर्ष ने एक बार जयसेन नामक किसी बौद्ध विद्वान् को उड़ीसा के अस्सी बड़े नगरों की आय दानस्वरूप भेंट देनी चाही। किन्तु उस त्यागी एवं निस्पह विद्वान ने उसको लेने से इन्कार कर दिया। भारत में इस प्रकार के दान और त्याग के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

पुराण कथाएँ और ज्ञान का संसार

पुराण शब्द 'पुरा' एवं 'अण' शब्दों की संधि से बना है। पुरा का अथ है– 'पुराना' अथवा 'प्राचीन' और अण का अर्थ होता है कहना या बतलाना। पुराण का शाब्दिक अर्थ है– प्राचीन आख्यान या पुरानी कथा। पुराणों में दर्ज है प्राचीन भारत का इतिहास। लेखक सत्यार्थ नायक की पुस्तक 'महागाथा' पुराणों की सौ कथाओं का एक ऐसा संकलन है जो भारतीय सनातन आस्था का प्रतिनिधित्व करता है। हिंदू धर्म में पुराण या प्राचीन आख्यान, उस पावन साहित्य का एक विश्वकोश है जो देवताओं, राक्षसों, ऋषियों और राजाओं की पारंपरिक किंवदंतियों का वर्णन करता है और ब्रह्मांड–विज्ञान, धर्मशास्त्र, वंशावली और दर्शन जैसे विषयों पर आधारित है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त और पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक रूप से सौंपे गए इस साहित्य को लगभग 250 ईसवी और 1500 ईसवी के बीच विद्वानों द्वारा लिखित रूप में दर्ज किया गया, जिन्होंने अनेक शताब्दियों के दौरान इन ग्रंथों को लिपिबद्ध और पुनः लिपिबद्ध किया। महापुराणों और उप–पुराणों में वर्गीकृत, ये ग्रंथ न केवल हिंदू संस्कृति के लिए महत्वपूर्ण हैं अपितु हिंदू विचारधारा के विकास के साक्षी भी हैं। प्रत्येक पुराण में अलग–अलग किंवदंतियों के अलग–अलग ढंग से विवरण प्रस्तुत किए गए हैं। इसे ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक की 100 कहानियाँ, घटनाओं के अनेक उपलब्ध संस्करणों में से केवल एक संस्करण को दर्शाती हैं। इसके अलावा, पुस्तक का स्वरूप सरल एवं लोकप्रिय अवधारणाओं जैसा नहीं, अपितु पुराणों की जटिल और बहुआयामी कथा–शैली जैसा है। उदाहरण के तौर पर, यहाँ विष्णु अवतार की कथाओं को विशेष ढंग से अनुक्रांत किया गया है। जहाँ तक इन कहानियों के चयन का प्रश्न है तो अंतिम सूची बनाने के लिए तीन मानदंड निर्धारित किए गए थे। कहानी कितनी दिलचस्प हैय उसमें कौन–कौन से पात्र शामिल हैं और, यदि कोई कहानी कम प्रसिद्ध रही, जबकि इसे अधिक पाठकों तक पहुँचना चाहिए था। इन कथाओं को कहते समय इनके कालानुक्रम की झलक दिखाने का भी पहली बार प्रयास किया गया है। यद्यपि पुराणों में समय की चक्रीय प्रकृति को ध्यान में रखते हुए यह अत्यंत कठिन है, फिर भी चार युगों, सात मन्वंतरों, विष्णु के अवतारों, देवताओं और राक्षसों की वंशावलियाँ और राजपरिवार के वंश–वृक्ष जैसे प्रमुख पौराणिक चिह्नों का उपयोग करके कई कहानियों की एक समय रेखा तैयार की गई है। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि इन कहानियों को पुस्तक में अलग–थलग न रखकर, इनके अतीत और भविष्य के संदर्भ के अंतर्गत ही रखा जाए और वे कारण–प्रभाव के चक्र के दायरे में रहें। कर्म और कर्म–फल के उस चक्र के अंदर,

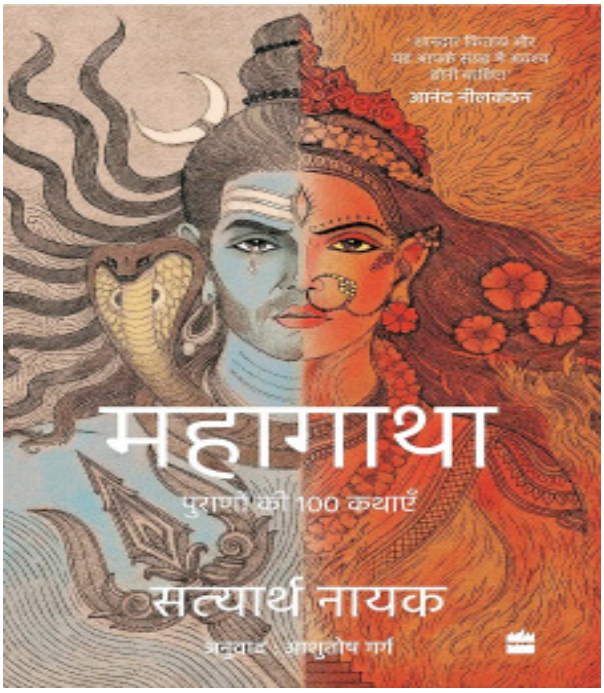

जिसके आधार पर हमारा ब्रह्मांड कार्य करता है। इसलिए, जो पुस्तक प्रस्तुत है, वह कथाओं का यादृच्छिक संग्रह नहीं है, अपितु निरंतर एवं परस्पर संबद्ध घटनाओं का एक महाकाव्यात्मक आख्यान है। जैसा कि इस तरह के पुनर्कथन की परंपरा रही है, इस किताब के कुछ हिस्सों को प्रभावशाली बनाने के लिए उन्हें नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कुछ कहानियों के कथानक को निखारने के लिए रचनात्मक स्वतंत्रता भी ली गई है परंतु उनके भाव को यथावत् रखा गया है– निष्कलंक और सरल। इन कहानियों की सबसे बड़ी सीख, इस बात का बोध है कि पुराणों में सब केवल अच्छा या बुरा नहीं होता। इन कथाओं में अच्छाई और बुराई का कोई स्पष्ट भेद दिखाई नहीं पड़ता अपितु एक अत्यधिक जटिल संरचना नजर आती है जहाँ देवता, कपट कर सकते हैं और असुर, सद्गुणी हो सकते हैं। जहाँ आसुरी प्रवृत्ति से दिव्यता का जन्म संभव है और दैवीय प्रवृत्ति से राक्षसी स्वभाव भी जन्म ले सकता है। जहाँ वरदान, प्रायः अव्यवस्था का कारण बनते हैं जबकि शाप, भलाई के लिए दिए जाते हैं। जहाँ अमृत प्रदान करने वाला क्षीरसागर हलाहल भी उगलता है। जहाँ सीता गाय को शाप देती हैं तो कृष्ण, सर्प को भी आशीर्वाद देते हैं। जहाँ पतिव्रता वृंदा को अपमानित करने वाले भगवान विष्णु, नरक की उप–पत्नियों को अंगीकार कर लेते हैं।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com